हिन्दी सिनेमा में महिलाओं के बदलते तेवर

डॉ. कुसुम संतोष विश्वकर्मा

सहायक प्राध्यापिका
एम् ए (हिंदी, संस्कृत), एम् फिल,
पीजीडीएचटी, पीएच-डी. सेट/नेट हिंदी
मुम्बई - 400101
vishwakarmakusum@ymail.com

कहते हैं कि 'सिनेमा' समाज का 'दर्पण' है। जो समाज में घटित होता है वही सिनेमा अथवा फिल्मों में दिखाया जाता है। समाज इन फिल्मों से सीख भी लेता है और इनको अलग-अलग मुद्दे भी देता है। जिस प्रकार एक लेखक अपने आस-पास की घटनाओं से प्रेरित होता है और अपनी लेखनी में अनेक रंगों को भरने की कोशिश करता है उसी प्रकार सिनेमा, समाज में घट रही घटनाओं से प्रेरणा ग्रहण करता है। लेकिन फिल्मों में रिटेक के चांसेस होते है जबकि वास्तविक जीवन में रिटेक जैसा कोई विकल्प नहीं होता है।

सिनेमा वैसे तो मनोरंजन का माध्यम है लेकिन सिर्फ मनोरंजन के लिए यदि फ़िल्में बनाई जाए तो शायद यह अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम अपनी सार्थकता खो देगा। मनोरंजन के साथ ही समाज के लिए कुछ सन्देश इसमें अवश्य समाहित होना चाहिए।

बीते कुछ वर्षो में महिलाऐं अधिक सशक्त और जागरूक हुई हैं। वे पढ़-लिख के बड़े-से-बड़े काम को अंजाम दे रही हैं। मेरी कॉम, कल्पना चावला, प्रियंका चोपड़ा, संधू, साईना नेहवाल इसका जीता-जागता उदाहरण हैं। जैसे-जैसे महिलाओं ने शिक्षा ग्रहण की वे स्थितियों को और बेहतर समझने लगीं और अपनी बात को भी पूरी गम्भीरता और साहस से रखने लगी।

हिंदी सिनेमा भी इसका अपवाद नहीं है। उसने भी इस बदलाव को बखूबी महसूस किया और अपनी कला के माध्यम से महिलाओं के इस बदलते रूप को बखूबी चित्रित किया। जो समीक्षा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है...

'बद्रीनाथ की दुल्हनियां' शशांक खेतान द्वारा निर्देशित रोमांटिक कॉमेडी फिल्म है। इस फिल्म में कई सामाजिक मुद्दों को एक साथ उठाया गया है जिसे धर्मा प्रोड्क्शन ने बड़ी खूबी के साथ फिल्माया है, लेकिन फिल्म का जो मुख्य मुद्दा है वो है कहानी की नायिका अर्थात वैदेही (आलिया भट्ट) की स्वतंत्र सोच और स्वतंत्र हो कर जीने की चाह। यही विषय इसे अन्य फिल्मों से अलग बनाती है। वैदेही पुरानी रुढियों और

मान्यताओं पर विश्वास नहीं करती है। वह अपने बल पर और अपनी शर्तों पर जीवन जीना चाहती है फिर चाहे उसे जो कीमत चुकानी पड़े।

फिल्म की कहानी झाँसी और कोटा जैसे छोटे से शहर की पृष्ठभूमि पर फिल्माया गया है। जहाँ पितृ सत्तात्मक परिवार आज भी अपने पूरे रौब में है। समाज की बागडोर आज भी इन शहरों में पुरुष के हाथ में है और स्त्रियों को केवल उनके आदेशों और इच्छाओं का पालन करना है। ऐसे समाज में 'वैदेही' जैसी सोच वाली लड़की का टिक पाना लगभग असम्भव है। लेकिन 'वैदेही' जैसी सोच वाली लड़की उस समाज के लिए खुली चुनौती है। 'वैदेही' स्वतंत्र हो कर जीने और आत्मनिर्भर बनने के केवल सपने ही नहीं देखती बल्कि उसे पूर्ण करने का साहस भी रखती है।

वैदेही छोटे शहर की लड़की जरुर है, लेकिन उसकी अपनी एक सोच है अपने सपनों को सच करने का दम है और वह एक महत्वाकांक्षी स्त्री है जो समाज की बनी बनाई लीक पर न चल के अपना मार्ग खुद बनाती है। वैदेही 'एयरहोस्टेस' बनना चाहती है। अपनी पढ़ाई के साथ-साथ वह अपना खर्च भी निकालती है और जब वह 'एयरहोस्टेस' बन जाती है तो वह केवल स्वयं तक सिमित नहीं रहती बल्कि वह दूसरी लड़कियों के लिए 'इंस्टिट्यूट' खोलती है ताकि जो उसने सहा है वह आगे आने वाली पीढ़ी को न सहना पड़े। फिल्म की कहानी एक सशक्त महिला की कहानी है जो समाज स्त्रियों के लिए प्रेरणादायक तो है ही साथ ही समाज की सोच को भी परिवर्तित करने का दम-खम रखती हैं।

अनिरुद्ध रॉय चौधरी द्वारा निर्देशित 'पिंक' फिल्म एक अलग ही अंदाज़ में महिलाओं की समस्या को उठाती है। फिल्म का मुख्य मुद्दा है समाज के द्वारा स्त्री और पुरुष के लिए दोहरे मापदंड। स्त्रियों के लिए अलग नियम और पुरुषों के लिए अलग। 'पिंक' फिल्म उन प्रश्नों को उठाती है जिनके आधार पर लड़कियों के चरित्र को आक़ा जाता है। हमारा समाज लड़की के चरित्र को कई पैमानों पर तय करता है यदि कोई लड़की किसी लड़के अथवा पुरुष से हस-बोल अथवा किसी लड़के के साथ कमरे में चली गई या फिर उसने शराब पी ली तो इसका सीधा मतलब होता है कि वह लड़की 'चालू' है उसका कोई चरित्र नहीं है और वह सेक्स के लिए लड़के को आमंत्रित कर रही है।

यह फिल्म उन लोगों के मुँह पर तमाचा है जो लड़कियों की आर्थिक आजादी के खिलाफ है। जो लड़कियों को आर्थिक रूप से परतंत्र होने में ही समाज की भलाई देखते हैं। उन्हें डर है कि यदि महिलाऐं पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गई तो उनकी गुलामी कौन बजाएगा ? उनके अहं को पोषित कौन करेगा ? और सबसे बड़ी बात महिलाओं को सही और गलत का पाठ किस तरह सिखाया जाएगा ? पिंक फिल्म उन सारी हदों को तोड़ती हुई आगे बढ़ती है जो रुढ़िवादी समाज ने बना कर रखी थीं। यह फिल्म उन लोगों के दिमाग के जाले साफ करती है जो स्त्री की स्वतन्त्रता के विरुद्ध खड़े हैं।

'पिंक' फिल्म बिना किसी तमाशे के समाज में व्याप्त कई ज्वलंत मुद्दों को समाज और अपने दर्शकों के समक्ष रखती है। फिल्म इस बात का पूरी दृढ़ता से समर्थन करती है कि लड़कियों को कब, कहां,

क्या और कैसे करना चाहिए की बजाय हमें अपनी सोच बदलनी चाहिए। कहानी दिल्ली और फरीदाबाद के बीच की पृष्ठभूमि पर फिल्माया गया है। वैसे तो दिल्ली हमारे देश की राजधानी है लेकिन यहाँ महिलाओं के लिए रहना जितना खौफनाक है उतना शायद ही देश के किसी और शहर में हो। इस बात का साक्षी पूरा देश है। यहाँ पर महिलाओं के साथ हुए अत्याचार की गूंज पूरे देश में सुनाई देती है।

मीनल (तापसी पन्नू) फलक (कीर्ति कुल्हारी) और एंड्रिया (एंड्रिया तरियांग) आर्थिक रूप से स्वतंत्र तथा अपने पैरों पर खड़ी लडकियाँ हैं जो दिल्ली में एक साथ रहती हैं। एक रात वे सूरजकुंड में 'रॉक शो' में जाती हैं जहाँ राजवीर (अंगद बेदी) और उसके साथियों से लड़कियों की मुलाकात होती है। मीनल और उसकी सहेलियों का बिंदास अंदाज देख कर वे अंदाज लगाते हैं कि इन लड़कियों के साथ कुछ भी किया जा सकता है, राजवीर हद पार कर बेवजह मीनल को छूने लगता है। मीनल अपने बचाव में उसके सिर पर बोतल मार उसे घायल कर देती है। और फिर खुद को पाक-साफ और इन स्वतंत्र ख्याल की लड़कियों को कॉल गर्ल, वेश्या, चरित्रहीन, और लड़को को फसाने वाली साबित करने में प्रशासन, पुलिस समाज और 'सपूतों' अर्थात लड़कों के घर वाले जुट जाते हैं।

इसी घिनौनी सोच से यह फिल्म हमें निकालने का प्रयास करती है। यदि हमारें संविधान ने महिला और पुरुष को एक समान अधिकार दिया है तो समाज अपनी सड़ी-गली मान्यताओं को पोषित करने के लिए महिलाओं से यह अधिकार छीन नहीं सकता है। समय आ गया है कि समाज अपनी सोच को बदले वर्ना महिलाऐं खुद इन्हें बदल देंगी, फिर समाज चाहे अथवा न चाहे। 'ना' का मतलब केवल 'ना' ही होता है यह इस फिल्म के महिला किरदारों ने बखूबी बताया। जो फिल्म के निर्देशक ने बड़ी खूबी और साहस के साथ प्रस्तुत किया है।

'श्री नारायण सिंह' द्वारा निर्देशित फिल्म 'टॉयलेट एक प्रेमकथा' भारत के गाँव में ही नहीं शहरों में भी व्याप्त 'टॉयलेट' अर्थात 'शौचालय' की समस्या पर आधारित फिल्म है। जो खास कर महिलाओं की खुले में शौच करने की समस्या पर आधारित है। अनेक सर्वे और अध्ययनों से यह साबित हो गया है की 50 % से ज्यादा महिलाओं से सम्बन्धित अपराध के मूल में खुले में शौच करने की समस्या से है। यह समस्या केवल महिलाओं से सम्बन्धित अपराध को ही जन्म नहीं देता बल्कि महिलाओं की स्वस्थ्य सम्बन्धी समस्या की जड़ भी यही है।

'टॉयलेट एक प्रेमकथा' फिल्म हमे भारत के भीतरी इलाकों में ले जाती है। जहाँ अभी भी दकियानुसी लोग रहते हैं, जहाँ 'खुले में शौच' को समस्या ही नहीं माना जाता है। फिल्म की नायिका जया (भूमि पेडनेकर) इसी मुद्दे को उठाती है। वह पति, ससुराल और रूढ़ परम्परावादी समाज को छोड़

देने का साहस रखती है लेकिन अपनी सोच और सिद्धांतों से समझौता नहीं करती है। जया को जब पता चलता है कि उसके ससुराल में शौचालय नहीं है तो वह अलसुबह उठकर महिलाओं के साथ समूह में जाकर 'लोटा पार्टी' करने से सीधा इंकार कर देती है।

जया एक पढ़ी-लिखी महिला है और वह अपनी और अपनी ही जैसी महिलाओं की समस्याओं से वाकिफ़ है । फिल्म की नायिका अपनी एक अलग सोच रखती है जो नए समाज की जागरूक स्त्री का प्रमाण है। अपनी सुरक्षा से वह कोई समझौता नहीं करती है। जया केवल 'टॉयलेट' की समस्या के विरुद्ध खड़ी ही नहीं होती बल्कि अपने जैसी महिलाओं को सचेत भी करती है उन्हें इससे होने वाली समस्याओं के प्रति जागरूक भी करने का प्रयास करती है।

फिल्म के लेखक, निर्देशक और पूरी टीम ने बखूबी आज की सशक्त महिला का चित्र समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

निर्देशक 'रवि उदयावर' द्वारा निर्देशित फिल्म 'मॉम' एक ऐसी महिला की कहानी है जो अपनी प्रिय बेटी के बलात्कार का दंश सह रही है और पूरी कहानी इसी दंश से निकलने की है। निर्देशक और निर्माता ने अपनी पूरी कोशिश की है उस वेदना उस दर्द को समाज के समक्ष पूरी सच्चाई से रखने की।

'बलात्कार' घिनौना लेकिन हमारे समाज एक कड़वा सच भी है। प्रारम्भ से ही हमारा समाज महिलाओं और पुरुषों में भेद-भाव रखता था। महिलाओं के लिए अलग नियम और पुरुष के लिए अलग। यदि बलात्कार जैसा क्रूर अपराध हुआ है तो हमारा पूरा समाज पीड़ित लड़की को दोषी साबित करने में लग जाता है और अपराधी लड़के को नाबालिक और निर्दोष। यह हमारे समाज की सोच है। बलात्कार की शिकार लड़की समाज, परिवार और स्वयं से लड़ती हुई खुद को समाप्त कर लेना ज्यादा सहज पाती है।

'मॉम' फिल्म की कहानी दिल्ली की पृष्ठभूमि पर आधारित है जो न केवल देश की राजधानी है बल्कि अपराधों की भी राजधानी है, खास कर महिलाओं के लिए। दिल्ली में देवकी (श्री देवी) एक अध्यापिका है। उसकी दो बेटियाँ हैं। जिसमे आर्य सबरवाल (सजल अली) बड़ी है। उसकी उम्र 18 वर्ष के करीब है। अपने दोस्तों के साथ वह पार्टी में जाती है जहाँ पर उसका क्लास मेट मोहित, उसका भाई और दो अन्य लोग उसका बलात्कार करते हैं। जैसा की सामान्य तौर पर होता है सभी दोषी सबूतों के अभाव में छूट जाते हैं। लेकिन कहानी की नायिका देवकी की अदालत में उन सभी को मौत की सजा सुना दी जाती है।

देवकी अपना निर्णय स्वयं लेती है और अपने तरीके से उन दरिंदों को सजा देती है। जो उसे और उसकी मासूम सी बेटी को तिल-तिल मरने के लिए मजबूर कर देते हैं। नायिका आहत तो होती है लेकिन स्वयं को कमजोर नहीं होने देती। यही इस कहानी की विशेषता है। आज की स्त्री आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ ही अपनी अस्मिता और अपने अधिकारों के प्रति भी सचेत और जागरूक है।

'नीरज पांडे' द्वारा बनाई गई फिल्म 'नाम शबाना' एक ऐसी महिला का चरित्र दर्शकों के समक्ष उकेरती है जो भावनात्मक रूप से जख्मी है। यह फिल्म भी महिलाओं से सम्बन्धी अपराधों पर आधारित है। यदि कोई महिला रात को सड़क पर घूमती है तो वह 'पब्लिक प्रापर्टी' हो जाती है उसके साथ कोई भी और कुछ की करने के लिए स्वतंत्र है। इसी सोच को झकझोड़ती हुई यह यह कहानी है। यदि देश की न्याय व्यवस्था अथवा समाज उसे न्याय नहीं दिला सकता तो वह स्वयं निर्णय करने में सक्षम है। फिल्म की नायिका 'शबाना' (तापसी पन्नू) एक ऐसा चरित्र है जो अपने प्रेमी को कुछ आवारा रईसजादों की वजह से खो देती है यह घटना उसे अंदर तक तोड़ देती है। लेकिन वह फिर से खुद को मजबूत करती है और अपने साथ हुए अन्याय का बदला लेती है। लेकिन नायिका केवल स्वयं तक सीमित नहीं रहती है बल्कि अपने जीवन को देश की सुरक्षा के लिए झोंक देती है।

आज की स्त्री न केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है बल्कि वे अपनी सोच से समाज को भी बदलने का दम-खम रखती है। यही आज की फिल्मों में निर्माता और निर्देशकों ने दिखाने की चेष्टा की है। समय के साथ समाज की सोच भी बदलती है जिसे वर्तमान समय के फिल्मकारों ने बखूबी, न केवल समझा बल्कि अपनी फिल्मों के माध्यम से इन बदलाओं को समाज के सामने भी प्रस्तुत किया।